शोध मंथन Vol. XV No.I Jan.-Mar.2024 ISSN: (P) 0976-5255 (e) 2454-339X
Impact Factor 8.870 (SJIF)

भारतीय ललितकला में वेदांत दर्शन का प्रारूप

प्राप्तिः 14.03.2024
स्वीकृतः 25.03.2024

14

डॉ० ओम प्रकाश मिश्रा
प्राचार्य
एम०आई०एम०टी०, देहरादून (उत्तराखण्ड)
ईमेलः *mishraop200@gmail.com*

भानूदेव शर्मा
शोधार्थी
एम०आई०एम०टी० देहरादून (उत्तराखण्ड)

सारांश

आज के आधुनिक युग में जहाँ हर वर्ग में नित नए प्रयोग किए जा रहे है वहीं ललित कला में भी इसका प्रभाव देखा जा सकता है। बदलते समय के साथ कला सृजन का रूप भी बदलताजा रहा है, चाहे वह लोक कला हो या आधुनिक कला सभी की निर्माण योजना में कुछ ना कुछ बदलाव देखने को मिल ही जाते है इस बदलते आधुनिक समय में भारतीय कला जगत् में भी नीत नए प्रयोग किए जा रहे है जो को कुछ हद तक पश्चिमीकला के आधार पर आधारित है परंतु भारतीय कला का अपना खुद का एक विशाल अस्तित्व है, खद्दुद की अपनी एक पहचान है जो प्रत्येक व्यक्ति को देश की संस्कृति और परंपरा से जोड़ती है। भारतीय कला वह कला है जिसमे कलाकृति का सष्जन एक आध यात्मिक अनुभूति देता है और साथ ही परम् आनंद की प्राप्ति होती है। भारतीय दर्शनशास्त्र के अनुसार कला का उद्देश्य है "रस की प्राप्ति और आनंद की अनुभूति", अर्थात् "सत्यम शिवम् सुंदरम्" की प्राप्ति जिसके उदाहरण वेदान्त दर्शन भी देता है। इसी महान भारतीय कला में वेदांत दर्शन के सिद्धांतो पर अपनी कला निर्माण करने वाले एक प्रमुख कलाकार है "श्री जय झरोटिया"।

मुख्य बिन्दु

वेदांत, समकालीन, भारतीयकला, आधुनिककला, आध्यात्म।

कला एवं सृजन एक भावनात्मक और आध्यात्मिक क्रिया है जो हर युग, काल, स्थान में पाई जाती है। स्वयं वेद और वेदान्त भी सृजन की बात कहते है "आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीन्नान्यत्किंचन मिश्त। स ईक्षत लोकान्नु सष्जा इति", अर्थात सृष्टि के आरंभ में एक मात्र आत्मा (परमात्व तत्व) ही था, उसके अतिरिक्त और कुछ भी सचेष्ट न था। तब उस परमात्मा ने विचार किया कि मैं लोकों का सृजन करूँ। (ऐतरेयोपनिष्द्) सृष्टि के आरंभ से ही सृजन हो रहा है और जब से जब से मानव में चेतना का जागरण हुआ और उसने अपने आसपास के संसार पर दृष्टि डाली तो अपने और संसार के अस्तित्व को जानने एवं उसे अर्थपूर्ण रूप देने की योजना बनाई। स्वयं एवं संसार को जानने का

प्रयास मनुष्य द्वारा रचितधनिर्मित प्राचीनतम असंबद्ध कलाकृतियों में स्पष्ट होती है। भारत में प्राचीनकाल से ही कला को धर्म और दर्शन की गहराईओ से समझा गया है। भारतीय दर्शन के अनुसार कला का उद्देश्य परम् आनंद की अनुभूति है, और वेदांत भी परम आनंद की प्राप्ति की बात करता है "ब्रह्मज्ञानः परमज्ञानः"। भारतीय कला अध्यात्म के सबसे निकट है जिसके उधारण कई रोपो में देखे जा सकते है जैसे – भारतीय शास्त्रों में कला शब्द का सर्वप्रथम प्रोयोग ऋग्वेद में मिलता है – "यथा कला, यथा शफ, मध, शष्ण स नियामती।" इसके पश्चात् अथर्ववेद और आरण्यक में कला शब्द का प्रयोग मिलता है। स्वयं 'भरतमुनी 'ने अपने 'नाट्यशास्त्र ' मे प्रथम शताब्दी मे कला शब्द का प्रयोग किया –" न तज्ज्ञान न तच्छिल्प न साविधा – न सा कला।'' अर्थात ऐसा कोई ज्ञान नहीं, जिसमे कोई शिल्प नहीं, कोई विधा नहीं, जो कला न हो। उपनिषदों में इस सृष्टि को परम्ब्रह्म की रचना/कला कहा गया है। जैसे पश्चिमी दृश्न के अनुसार कला का उद्देश्य प्रकृति का अनुकरण करना है वही दूसरी ओर भारतीय दर्शन के अनुसार कला का उद्देश परम आनंद की प्राप्ति करना है, परन्तु कला मूल उद्देश्य "सौंदर्य की रचना" करनी है परन्तु भारतीय दर्शन के अनुसार कला निर्माण सौंदर्य का अनुकरण करना भी नहीं या जिसका अनुकरण किया गया है वह जरूरी नहीं है कि सुंदर ही हो। कला वह है जो सत्य हो, शिव हो और सुंदर हो, अर्थात् सृजन या निर्माण सत्य पर आधारित हो, वह पूर्ण रूप से संतुलित हो और साथ ही सुंदर हो तभी वह कला कहलाने योग्य है। जैसा कि भारत के समकालीन कलाकार श्री जय झरोटिया जी का भी मानना था कि "कुछ भी बना देना भर कला नहीं है", उसके पीछे यथार्थ की कल्पना होनी और भाव होना होना आवश्यक है।

भारतीय कला जगत में अनेकों कलाकारों में अपने–अपने चित्रों के माध्यम से इस महान संस्कृति और अध्यात्म को भिन्न–भिन्न रूप प्रदान किए है वही कलाकार जय झरोटिया के चित्र और कलाकृतियाँ में सौंदर्य के साथ वेदान्त दृश्न भी स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। एक साक्षात्कार में वेद प्रकाश भारद्वाज जी साथ वार्तालाप के दौरान जय झरोटिया जी ने अपने विचार कुछ इस तरह व्यक्त किए– "की अपने कला जीवन के आरंभिक काल में मैं समझता था कि कुछ भी बना देना कला है लेकिन बाद में अनुभव हुआ कि कला केवल रूप में नहीं बल्कि भाव में और उस भाव को अभिव्यक्त करने में है"। भारतीय कला भी भावों की अभिव्यक्ति से आनंद को प्राप्त करने की बात करती है।

जय झरोटिया के अनुसार कला हृदय का केंद्र है जिससे आनंद की प्राप्ति होती है। कला का कोई भी रूप हो उसे जितना प्रयास किया जाता है वह उतना ही आनंद देती है। जो दिख रहा है उसकी नकल तो आज के समय में कैमरा भी कर सकता है परन्तु कलाकार दृश्यमान रूप के पीछे छिपे रहस्यमय सौंदर्य को उजागर करता है।

दृश्य जगत् में जो कुछ स्थूल है उसे यथार्त रूप से बना देना सुंदर तो लग सकता है परन्तु भी परम् सत्य नहीं होता है, परम् सत्य के लिए स्थूल वस्तु के पीछे छिपे सूक्षम रहस्य को जानना आवश्यक है। वेदान्त में भी इस दृष्टिगोचर जगत को "प्रपंच" कहा गया है, प्रपंच अर्थात् परम सत्य द्वारा रचित माया जो सुंदर तो लगती है परन्तु सत्य नहीं होती। जिस प्रकार परम सत्य को जाने के लिए अंतः मन को एकाकी भाव से एक चित्त में स्थिर करना होता है ठीक उसी प्रकार अपने मन और विचार से उत्पन्न भावों को एकाकी करके स्थिर चित्त द्वारा ही वास्तविक कला का निर्माण हो सकता

है। जिस प्रकार "ईशावास्योपनिषद" में कहा गया है– यस्तु सर्वाणी भूतान्यात्मन्येवानुपष्यती। सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते।।" अर्थात् जब व्यक्ति जड़–चेतन सृष्टि को आत्म तत्व में ही स्थित अनुभव करता है तथा सभी भूतों (तत्वों) के अंदर इस आत्म तत्व को समाहित अनुभव करता है, तब वह किसी प्रकार भ्रमित नहीं होता। ठीक वैसे ही प्रकृति को समझ कर, उसके तत्वों को ज्ञान की दृष्टि से देखने के बाद अपने भावों एवं विचारों को भिन्न–भिन्न रूप, रेखाओं, रंगो द्वारा एक चित्र निर्माण करना वास्तव में कला का उच्चतम आनंद है।

जय झरोटिया के अनुसार कला में किसी भी वस्तु को कई प्रकार से देखा जा सकता है जैसे की भौतिकता के आधार पर उसके उसके रूप, रंग और स्पेस को जानना। दूसरा है उसकी

विषय वस्तु के भौतिक रूप को धर्म, गुण और आध्यात्मिक दृष्टि से उसके रूप में उतर जाना, तीसरा उसी वस्तु को अपने निजी विचारों की दृष्टि से देखना।

चौथा है केवल सत्यता के साथ उस वस्तु को देखना।

जब कलाकार वस्तु को सत्यता से देखना शुरू करता है तबसे ही उसकी कलात्मक दृष्टि का विकास होना आरंभ हो जाता है। कलाकार जब वस्तु को देखने साथ अनुभव करना शुरू करता है वही से कला के दिव्य जगत के दृश्न उसे होने शुरू हो जाते है और तब कलाकृति अनुकरण ना होकर अनुसरण या सत्य कला बन जाती है।

वास्तव में जो दिख रहा है जरूरी नहीं है कि वह सत्य ही हो क्या पता उसे वैसा दिखाया जा रहा हो उधारण– चाँद का प्रकाश रात्रि में दिखाई देता है परन्तु चाँद का अपना कोई प्रकाश नहीं होता, असल में सूर्य के प्रकाश से चंद्रमा प्रकाशित होता है। ठीक वैसे ही वस्तुओं को सत्य के आधार पर देखने से उसके पीछे छिपे रहस्य का पता चल जाता है। सत्य का आभास होने के बाद मस्तिष्क में नए विचार उत्पन्न होते है, उन्हीं विचारों के साथ संवाद स्थापित करके उनका अनुकरण किए जाने पर श्रेष्ठ कला का निर्माण होता है। अपने विचारों के साथ संवाद करना वैसा है जैसे किसी सांकेतिक भाषा को जान लेना। प्रकृति की हर वस्तु में मूर्त या अमूर्त रूप से संवाद होता रहता है उधारण के लिए– जैसे वायु का कोई रूप, रंग और आकार नहीं होता, फिर भी वह अपने होने का एहसास करा देती है। उसके तेज या धीमा भाव भी पता चल जाता है। वैसे ही विचारों को प्रत्यक्ष

तौर पर नहीं देख सकते परन्तु उनके साथ संवाद स्थापित करके उसे मूर्त अकार दे सकते है। ईश्वर की प्रतिमा इसका सबसे भव्य उधारण है।

वास्तविकता में यदि हम यथार्त का अनुकरण करते है तो केवल एक ही रूप को दुबारा देखते है जिसमें कुछ तर्क करने हेतु विशेषता नहीं होती और जहाँ तर्क नहीं वहाँ नयापन नहीं। नवीनता का अभाव विकास को रोक देता है, जबकि कला के माध्यम से कलाकार नवीन विचारधारा को विकारपूर्ण रूप से प्रस्तुत करता है। इसलिए कला में विकास और नवीनता के तर्क का होना आवश्यक है जिससे कला निरंतर विकास की ओर बड़ती रहे।

जिस प्रकार परम्सत्य अर्थात् ब्रह्म की प्राप्ति के लिया सत् चित् की आवश्यकता होती है ठीक उसी प्रकार कला के वास्तविक भाव को जान ने के लिए सत् चित् की आवश्यकता होती है। किसी भी पुरानी धरना को लेकर यदि हम किसी विषय वस्तु या कलाकृति का अवलोकन करे तो उस वस्तु की या कलाकृति की वास्तविक भावना और अर्थ को नहीं जान सकते। सत् चित् से किसी विषय वस्तु या कलाकृति का अवलोकन ही उसकी वास्तविक विशेषता और भावना को जानने में सहायक हो सकताहै और नवीन विचार को आनंद पूर्वक स्वीकार कर स्कता है।

इन सब सिद्धांतों के माध्यम से यदि हम जीवन का आंकलन करे तो पाएँगे की कला और अध्यात्म एक ही स्रोत की दो धाराएँ है जिनका मुख्य उद्देश्य है सत्य और परम् आनंद की प्राप्ति है।

संदर्भ

1. प्रताप, डा० रीता. (2015). सौंदर्य शास्त्र।
2. शर्मा, प० आचार्य श्रीराम. वेदांत (उपनिषद एवं बृह्मसूत्र) – द्वार लिखित एवं अनुवादित।
3. झरोटिया, जय. (2015). मेरा कुछ सामान।